छठवां अध्याय

।। सारांश।।

विशेष :- श्री मद् भगवत् गीता जी में दो तरफा (विरोधाभास युक्त) ज्ञान है। अध्याय 3 श्लोक 1-2 में अर्जुन ने यही कहा है कि आप की दोतरफा बातों से मैं विचलित हो रहा हूँ। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 में कर्म त्याग कर एक स्थान पर बैठ कर (कर्मसन्यास प्राप्त करके) साधना करने वाले को पाखण्डी बताया है तथा कर्मयोग अर्थात् कार्य करते-2 साधना करने वाले (योगी) भक्त को श्रेष्ठ ठहराया है। फिर गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में एक स्थान पर विशेष आसन पर बैठ कर नाक के अग्रभाग पर ध्यान लगाने को कहा है। इन श्लोकों (अध्याय 6 के श्लोक 10 से 15) में अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 का खण्डन है।

❖ *अध्याय 6 श्लोक 2 में काल भगवान ने दोनों ही प्रकार की साधना करने वाले साधकों की साधना का विवरण दिया है। पूर्ण परमात्मा की साधना के विषय में गीता अध्याय 4 श्लोक 34 में वर्णन है कि तत्वज्ञानी अर्थात् तत्वदर्शी संत से प्राप्त कर।*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 1 से 9 तक पूर्ण परमात्मा का कपा पात्र विधिवत् साधक ही वास्तव में सर्व सुख प्राप्त करता है, क्योंकि पूर्ण परमात्मा शास्त्र अनुकूल साधक का सच्चा साथी है जिससे उसका मन रूकता है। मन तो ब्रह्म (काल) है, यह पूर्ण परमात्मा से डरता है। दूसरे जो शास्त्र विधि त्याग कर साधना करते हैं वे असफल रहते हैं।*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 7 में गीता ज्ञान देने वाले ने अपने से अन्य परमात्मा का ज्ञान बताया है कि तत्वज्ञान प्राप्त भक्त तत्वदर्शी संत से दीक्षित (परमात्मा समहित) परमात्मा के अनुकूल चलता है। सुख, दुःख, मान-अपमान से विचलित न होकर शांत रहता है। परमेश्वर की रजा में प्रसन्न रहता है। उसके लिए परमात्मा प्राप्ति के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता।*

फिर अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में गीता ज्ञान दाता ने अपने द्वारा बताए गए भक्ति साधनों का विवरण दिया है जो इसका वेद विरूद्ध मत है क्योंकि वेद अनुसार साधना का वर्णन गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 में है। इसलिए अध्याय 6 श्लोक 32 में कहा है कि वास्तव में सर्वश्रेष्ठ साधक तो वही है जो (परमः मतः) शास्त्र अनुकूल साधना करता है। अर्जुन ने अध्याय 6 श्लोक 33-34 में पूछा भगवन जो उपरोक्त साधना की विधि मन को रोकने की आपने कही है मुझे नहीं लगता कि मन वश हो सकता है। मन को रोकना तो वायु को रोकने के समान अर्थात् अति असम्भव है। भगवान ने श्लोक 35-36 में स्वीकति दी है कि वास्तव में मन को रोकना बहुत कठिन है, परन्तु जो शास्त्र अनुकूल साधना से पूर्ण प्रभु के सहयोग से विजयी आत्मा है वही मन को रोक सकता है।

गीता अध्याय 6 श्लोक 1-9 का सारांश :-

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 1 का सारांश :- तत्वज्ञान को समझकर कर्तव्य भक्ति कर्म करने चाहिऐं। जो साधना करे, उसका फल यानि लाभ प्राप्ति के लिए उद्देश्य बनाकर न करे। जैसे नौकरी लग जाए तो नाम का इतना जाप करूँगा/करूँगी। इतना धन धर्म में लगाऊँगा/लगाऊँगी। जो इस तरह मनोकामना न करके अपना कर्तव्य समझकर साधना करता है, वह वास्तव में सन्यासी तथा योगी यानि भक्त है। केवल घर त्यागकर जंगल में जाकर घास-फूस, पत्ते-फल खाने वाला यानि अग्नि से पकाकर भोजन न खाने वाला अग्नि का त्यागी है। वह सन्यासी नहीं है तथा*

क्रियाओं यानि दैनिक कार्यों को त्याग देने वाला भी योगी यानि भक्त नहीं है।(6/1)

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 2 का सारांश :- जो संकल्पों का त्याग नहीं करता, वह योगी यानि भक्त नहीं है। जो फल की इच्छा त्यागकर भक्ति करता है, उसी को सच्ची (योग) भक्ति जान।(6/2)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 3 का सारांश :- निष्काम भाव यानि सांसारिक इच्छाऐं त्यागकर (मुनेः) मुनि यानि भक्त के लिए भक्ति करना कहा जाता है जो साधक के लिए कल्याणकारक है।(6/3)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 4 का सारांश :- योगारूढ़ यानि भक्ति में संलग्न भक्त साधना काल में कर्मों को करता हुआ भी मंत्र पर ध्यान रखता है जैसे ड्राईवर (कार-बस या अन्य गाड़ी के चालक) गाड़ी चलाते-चलाते भी साथी से बातें करते हैं, गाड़ी भी चलाते हैं। उस समय वह केवल अपने चालक कार्य में ही आसक्त नहीं होता। इसी प्रकार भक्त कार्य करते-करते भी भक्ति करता है। उसका ध्यान केवल कार्य में लिप्त नहीं रहता। ऐसे अभ्यास में परिपक्व साधक योगारूढ़ कहा जाता है।(6/4)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 5-6 का सारांश :- सत्य साधना करने वाला निष्काम भक्त अपने आपका मित्र है। जो इच्छा करके भक्ति करता है, विकार भी करता है। वह अपने आपका शत्रु है।(6/5-6)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 7 का सारांश :- गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि जो साधक गर्मी-सर्दी तथा दुःख-सुख में भी परमात्मा यानि सच्चिदानंद घन परमात्मा की भक्ति करता है। वह (परमात्मा समहितः) परमेश्वर में सम्यक प्रकार यानि सच्ची लगन से स्थित है यानि सच्चा भक्त है।(6/7)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 8-9 का सारांश :- जिन साधकों का अंतःकरण सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान को जानकर संतुष्ट है कि इसके अतिरिक्त कोई जानना शेष नहीं। जिनकी (कूटस्थः) आत्मा निर्मल हो गई है। उसके लिए संसारिक पदार्थ कोई महत्व नहीं रखते। वह (योगी) साधक युक्त यानि परमात्मा की भक्ति में लीन कहा जाता है। वह मित्र-शत्रु, सुहृद् यानि सबका हितैषी द्वेष करने वालों में तथा धर्मात्माओं, बन्धुओं तथा पापियों में भी समान भाव रखने वाला विशेष भक्त है।(6/8-9)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 10-15 का सारांश :- इन श्लोकों में गीता ज्ञान दाता ने अपना मत बताया है कि जो वेद विरूद्ध है, सूक्ष्मवेद के भी विरूद्ध है क्योंकि यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 15 में कहा है कि ("ओम् क्रतु स्मर किलवे स्मर क्रतुम् स्मर।") भावार्थ :- ओम् (ॐ) नाम का जाप मनुष्य जीवन का मुख्य कर्तव्य जानकर स्मरण कर, विशेष तड़फ के साथ स्मरण कर तथा कार्य करते-करते स्मरण कर।*

(वायु अनिलम् अमृतम् अथ इदम भस्मान्तम शरीरम्) भावार्थ :- श्वांस-उश्वांस स्मरण करके शरीर के अंत के बाद यानि मृत्यु के पश्चात् ओम् जाप से होने वाला (अमृतम्) अमरत्व यानि ब्रह्म लोक प्राप्त होगा।(यजुर्वेद अध्याय 40 मंत्र 15)

सूक्ष्मवेद में कहा है कि :-

नाम उठत नाम बैठत, नाम सोवत जाग रे। नाम खाते नाम पीते, नाम सेती लाग रे।।

भावार्थ :- गुरू जी द्वारा दिए नाम का जाप दैनिक कर्म करते-करते कर। सुबह उठते ही परमात्मा का नाम जाप कार्य से आराम करते समय व्यर्थ न बैठ नाम जाप कर। किसी विशेष आसन की आवश्यकता नहीं है। न किसी विशेष मुद्रा की आवश्यकता नहीं है। जैसे भी विश्राम के समय बैठते हो। उसी तरह बैठकर नाम जाप कर। रात्रि में सोने से पहले नाम जाप कर उठकर कार्य करते-करते नाम जाप कर खाना खाने से पहले नाम का जाप कर, पानी पीते समय परमात्मा को याद कर।

''हठयोग करके ध्यान करना गीता ज्ञान दाता का मत व्यर्थ है''

गीता अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 का सारांश :- इन श्लोकों में एक स्थान पर बैठ कर हठ योग द्वारा अभ्यास करने को कहा। जबकि गीता अध्याय 3 श्लोक 3 से 8 तक इस के विपरीत कहा है कि जो एक स्थान पर बैठकर हठ करके इन्द्रियों को रोककर साधना करते है वे पाखण्डी है। एक स्थान पर बैठा रहा तो निर्वाह कैसे होगा इस अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 के आधार पर आज कल भोले जिज्ञासु भक्त आत्म ध्यान योग केन्द्रों के चक्र लगाते हैं। ध्यान साधना कोई अढाई घण्टे सुबह-शाम आवश्यक बताता है, कोई किसी फिल्मी गाने की धुन बजा कर नाच-नाच कर। फिर थक जाए तब शव-आसन में निढ़ाल (मंतसम) होकर आनन्द तथा फिर निन्द्रा को ध्यान की अंतिम स्थिति बताते हैं। कोई प्रश्न करता है कि ध्यान कहाँ लगाएँ? उत्तर मिलता है कि त्रिकुटी पर लगाएँ। त्रिकुटी कहाँ? उस साधक को कोई ज्ञान नहीं। फिर उसे दोनों भौंहों (सेलियों जो आँखों के ऊपर मस्तिक में बाल उगे हैं उन्हें सेली/भौंव कहते हैं) के बीच जहाँ नाक समाप्त होता है तथा मस्तक आरम्भ होता है। वह भोला साधक उस अज्ञानी गुरु के बताए मार्ग पर प्रयत्न करता है। जब कुछ भी हासिल नहीं होता तो वह गुरुदेव कहता है - क्या दिखाई दिया? साधक कहता है कुछ नहीं। गुरुदेव बताता है कि कुछ आवाज सुनी। साधक कहता है - हाँ सुनी। बस और क्या देखना है, यही है अनहद शब्द। अज्ञानी गुरू फिर कहता है कि दोनों आँखों की पुतलियों के ऊपर के हिस्से को ऊंगलियों से दबाओ। कुछ प्रकाश दिखाई दिया? साधक कहता है - हाँ, दिखाई दिया। बस यही ज्योति स्वरूप (प्रकाशमय) परमात्मा है। साधक उस अंधे गुरु के साथ अपना जीवन बर्बाद कर जाता है। ध्यान के अभ्यास से ध्यान यज्ञ हो जाती है। जिस का फल स्वर्ग, सांसारिक भोग तथा फिर कर्माधार पर नरक, चौरासी लाख जूनियाँ। ध्यान का अभ्यास भी इतना हो कि वह निर्विकल्प (संकल्प रहित) हो जाए। इसका फल स्वर्ग प्राप्ति है। जो अढ़ाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यास करते हैं, उन्हें कुछ भी प्राप्ति नहीं है।

❖ *विशेष :- गीता अध्याय 17 श्लोक 5-6 में एक स्थान पर बैठकर घोर तप करते हैं। वे शास्त्रविधि से रहित साधना करते हैं। वे मुझे तथा परमात्मा को कश करने वाले हैं। उन अज्ञानियों को असुर स्वभाव वाले जान। यह वेद ज्ञान है। गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 तक भी वेद ज्ञान है। इस अध्याय 6 श्लोक 10-15 में काल का मत है। हमने वेद ज्ञान को ग्रहण करना है।*

।। ध्यान समाधि का फल ।।

एक समय वन में एक साधक ने ध्यान में समाधिस्थ हो जाने का इतना अभ्यास कर लिया कि कई-2 दिन तक ध्यान (मैडिटेशन) में कुछ खाए पिये बिना ही लीन रहने लगा। उसी जंगल में बहुत से सन्यासी भी साधना करते थे। एक दिन उस योगी के मन में आया कि साथ वाले गांव में जा कर छा (लस्सी) पी कर आता हूँ। उस उद्देश्य से वह योगी सुबह सूर्योदय होने से पहले नजदीक के गाँव में गया। एक दरवाजा खट-खटाया। उसमें से एक वद्धा निकली तथा कारण पूछा तो योगी ने कहा - माई छा (लस्सी) पीनी है। इस पर माई ने कहा आओ बैठो, महात्मा जी। मैं अभी छा बनाती हूँ अर्थात् दूध रिड़कती हूँ। महात्मा जी को उचित आसन दे दिया और स्वयं दूध रिड़कने लग गई।

माई को लगभग एक घंटा छा बनाने में लग गया। फिर छा में नमक डाल कर गिलास भर

कर महात्मा (योगी) जी को कहा महाराज जी छा पीलो!। बार-बार आवाज लगाने पर भी महाराज जी नहीं बोले। तब आसपास के व्यक्तियों को इक्ट्ठा किया तथा बताया कि यह महात्मा जी छा पीने आया था। मैंने कहा महाराज अभी छा तैयार करती हूँ। लगभग एक घंटा लगेगा। इसने कहा ठीक है माई, मैं अपना भजन करता हूँ। अब यह बोल ही नहीं रहा। (उस महात्मा जी ने सोचा कि माई छा तैयार करने में एक घंटा लगाएगी तब तक क्यों न ध्यान लगा कर ध्यान साधना करूँ। ध्यान से अन्दर कई नजारे दिखाई देते हैं। जिसको यह चसका पड़ गया वह फिर बाहर का दृश्य कम अन्दर का ज्यादा देखता है। जैसे कोई मेले में चला जाए वहाँ नाना प्रकार के खेल-नाटक-गाने बजाने व वस्तुएँ होती हैं। उन्हें देखने में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे समय का भी ज्ञान नहीं रहता। ठीक इसी प्रकार अन्दर भी ऐसे फिल्में चल रही हैं जिस साधक की अच्छी साधना हो जाती है उसे अन्दर के नजारे दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी कारण वह कई घंटों व कई दिनों तक सुध-बुध खो कर मस्त बैठा रहता है। वह महात्मा जी समाधिस्थ अवस्था में था।) सब व्यक्यिों ने भी आवाज लगाई परंतु महाराज जी टस से मस नहीं हुआ। सभी ने मिल कर यही फैसला किया कि इसके किसी साथी साधक को बुलाते हैं। वही युक्ति से इसे उठाएगा। ऐसा सोच कर एक व्यक्ति वहाँ पहुँचा जहाँ और कई साधक साधना करते थे। जब उन साधुओं को पता लगा तो दो-तीन वहाँ पहुँचे जहाँ वह महात्मा समाधिस्थ अवस्था में बैठा हुआ था। उन्होंने भी कोशिश की परंतु महाराज नहीं उठा। तब उसके साथी साधकों ने कहा कि यह समाधी में है। इसे छेड़ो मत। अपने आप उठेगा। ऐसा ही किया गया। वर्षों बीत गए परंतु वह साधक अपनी समाधी से नहीं उठा। तब उसका अलग से छप्पर बना दिया। हजारों वर्षों के बाद उठा। (उस समय वह गाँव भी उजड़ चुका था। कोई नहीं था।) उठते ही कहता है - लाओ माई छा (लस्सी)।

वर्षों व्यर्थ गंवाए योगी, इच्छा मिटी न चाह।
उठ मूर्खा कहत है पुछत है, लाओ माई छाह।।

❖ *पाठक विवेक करें कि इतनी साधना के ध्यान अभ्यास से भी मनोकामना व भोग पदार्थों की चाह नहीं मिटी तो अढाई घंटे व नाच-कूद करके ध्यान अभ्यासी क्या प्राप्त कर सकेंगे? उस साधक की ध्यान यज्ञ हुई जिसका फल पूर्व बताया है। सतनाम बिना तथा पूर्ण गुरु के बिना जीव का जन्म-मरण दीर्घ रोग नहीं कट सकता। अध्याय 6 के श्लोक 5 और 6 का भाव है कि मनुष्य दुष्कर्म करने से तो अपना ही दुश्मन है। अच्छे कर्म करने से अपना मित्र है अर्थात् आत्मकल्याण कर लेता है। पूर्ण परमात्मा का पूर्ण ज्ञान होने पर शास्त्र विधि अनुसार साधना करने से यह आत्मा अपनी ही मित्र है अन्यथा शत्रु ही है।*

।। योगी कौन?।।

अध्याय 6 के श्लोक 7-8 में काल ब्रह्म ने कहा है कि अर्जुन जो साधक गर्मी-सर्दी, दुःख-सुख में तथा मान-अपमान में समान रहने वाला उभरी हुई आत्मा है, वह सदा भगवान में लीन रहता है तथा जिसके लिए पत्थर, मिट्टी, सोना सर्व समान है। वह योगी परमात्मा प्राप्त कहा जाता है।

अध्याय 6 के श्लोक 9 में भगवान कहता है जो व्यक्ति मित्र और बैरी को समान समझे अर्थात् पक्षपात रहित हो व द्वेष करने वालों व सम्बन्धियों व पापियों को भी एक दृष्टि से देखे। वह वास्तव में योगी है।

विचार करें :-- यह सर्व गुण तो अर्जुन में पहले ही विद्यमान थे जो कह रहा है कि भगवान मैं

युद्ध नहीं करूँगा। युद्ध में स्वजनों यानि चचेरे भाई कौरवों तथा रिश्तेदारों को मारकर पाप करके राज्य प्राप्त करने से अच्छा तो भिक्षा का अन्न खा कर निर्वाह करना उचित समझता हूँ। देखें गीता जी के अध्याय 2 के श्लोक 4 और 6 में। एक तरफ तो भगवान (काल) कह रहा है अर्जुन युद्ध कर ले। फिर कहता है अर्जुन योगी हो जा। योगी लक्षण आप ऊपर श्लोक 7, 8 ,9 में ध्यान से पढ़ें। इसमें स्वसिद्ध है कि गीता ज्ञान भगवान कृष्ण का नहीं है बल्कि काल (ब्रह्म) का कहा हुआ है। जिसका उद्देश्य केवल पाप (युद्ध के द्वारा हत्याएँ) करवाना था। साथ-2 वेदों वाला ज्ञान भी कह रहा है। योगी (भक्त) के लक्षण हैं कि वह अहिंसा तथा निर्वैरिता और सर्व का हित चाहने वाला हो। परंतु साथ में युद्ध करने की प्रेरणा भी दे रहा है। युद्ध में कोई भी अहिंसा या निर्वैरिता का पालन नहीं कर सकता।

कबीर, कबीरा खड़ा बाजार में, सब की मांगै खैर। न काहु से दोस्ती, न काहु से बैर।।

।। गीता ज्ञान में विरोधाभास ।।

गीता में दो प्रकार का ज्ञान है :- 1. वेद ज्ञान 2. गीता ज्ञान दाता का अपना मत(सिद्धांत)।

गीता अध्याय 3 श्लोक 31, अध्याय 6 श्लोक 36, अध्याय 7 श्लोक 18, अध्याय 13 श्लोक 2, अध्याय 18 श्लोक 70 में कहा है कि मेरा मत भी गीता में है।

जो वेद ज्ञान है, वह तो पूर्ण परमात्मा द्वारा दिया गया था। उसी का वर्णन काल ब्रह्म (ज्योति निरंजन) ने किया है। वह सही है। जैसे गीता अध्याय 3 श्लोक 4-9 में कहा है कि कोई भी व्यक्ति किसी समय में कर्म किए बिना नहीं रह सकता। श्लोक 6 में कहा कि यदि एक स्थान पर बैठकर हठपूर्वक कर्म इन्द्रियों को वश करके बैठ गया तो ज्ञान इन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। मन की चंचलता बनी रहती है। ऊपर से तो शांत दिखाई देता है, अंदर सब चल रहा है। वह दंभी (ढ़ोंगी) है। श्लोक 7-9 में कहा है कि हे अर्जुन! तू एक स्थान पर बैठकर हठयोग करके साधना करने की अपेक्षा कर्म इन्द्रियों से कर्म कर। उन को रोककर दैनिक कर्म भी कर तथा भक्ति भी कर। जो ऐसा करता है, वही श्रेष्ठ है। तू शास्त्रविधि से कर्तव्य कर्म कर। कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। यदि कर्म नहीं करेगा तो तेरा शरीर का निर्वाह भी तो सिद्ध नहीं होगा। इसलिए कर्तव्य कर्म कर। (यह वेद ज्ञान है।)

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 10-15 में इसके विपरित अपना मत (काल जाल में रखने का विधान) बताया है। कहा है कि साधक यानि योगी अपने मन, इन्द्रियों सहित शरीर को वश में रखने वाला आशा रहित संग रहित अकेला ही एकान्त स्थान पर स्थित होकर अपनी आत्मा को भक्ति में लगाए। श्लोक 11 में बताया है कि आसन कैसा हो। कहा है कि स्थान (जमीन) में क्रमशः कुशा (डाभ) मंगछाला, फिर वस्त्र बिछे। आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा हो, अपने आसन को ऐसे स्थिर स्थापित करके (फिर 12 में कहा कि) उस आसन पर बैठकर चित और इन्द्रियों को वश में रखते हुए मन को एकाग्रह करके अंतःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे। फिर श्लोक 13-15 तक स्पष्ट किया है कि ऐसे-ऐसे कर उससे मुझ में रहने वाली शांति को प्राप्त होता है यानि मुझ काल के जाल में ही रहेगा।*

इसी अध्याय 6 श्लोक 46 में श्लोक 10-15 वाले विधान का खण्डन किया है कि कर्म योगी (गीता अध्याय 3 श्लोक 3-8 वाला) यानि कर्तव्य कर्म करता हुआ भक्ति करने वाला भक्त तपस्वियों से बढ़कर है। जो केवल संग्रह करके वक्ता बने हैं, उनकी साधना शास्त्र अनुकूल नहीं है। ऐसे

ज्ञानियों से भी कर्मयोगी बढ़कर यानि श्रेष्ठ हैं। मनोकामना पूर्ति के लिए भक्ति कर्म करने वालों से भी योगी (भक्त) श्रेष्ठ हैं। इसलिए तू योगी हो।

❖ *पाठकजन अब आप गीता को पढ़ेंगे तो गूढ़ रहस्य खुलेंगे। गीता का यथार्थ ज्ञान होगा। आँखें खुल जाऐंगी।*

विचार करें :-- अध्याय 6 श्लोक 10 से 15 में विशेष आसन पर स्थित होकर हठ योग करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग अभ्यास करने को कहा है न की मुक्ति है। यदि अन्तःकरण शुद्ध हो गया और नाम सही नहीं मिला तो भी साधना व्यर्थ, केवल ध्यान यज्ञ का लाभ मिलेगा। सर्व यज्ञों से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। धर्म यज्ञ, ध्यान यज्ञ, हवन यज्ञ, प्रणाम यज्ञ और ज्ञान यज्ञ, इनको करने वाले साधक में विनम्रता आती है और यज्ञों का फल भी मिलता है। जैसे भूमि को संवार कर बीज बीजने योग्य बना दें (अन्तःकरण शुद्ध हुआ) फिर बीज बीजें नहीं। तो वह संवारी हुई जमीन व्यर्थ है। इसी प्रकार नाम (सतनाम) बिना सर्व साधना व्यर्थ है। यज्ञों का फल तो ऐसा है जैसे जमीन संवार कर छोड़ दी। फिर उसमें पानी खाद डालते रहे। घास-झाड़ियाँ उग जाएंगी। कुछ लाभ तो वे दे देती हैं परंतु गेहूँ का बीज बोया जाए तो पशुओं का चारा भी बने और रोटियाँ (चपातियाँ) भी मिलें अर्थात् यदि तीन लोक का पूर्ण लाभ लेना है तो जैसा गीता में लिखा है कि अर्जुन यज्ञ कर तथा ॐ नाम का जाप पूर्ण गुरु से ले कर करें तो महास्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है।

(यदि पूर्ण लाभ लेना है तो सतनाम रूपी बीज बीज कर अमर लोक में जा कर जीव अमर हो जाता है।)

विचार करें :- गीता ज्ञान दाता ने अर्जुन से कहा है कि ब्रह्मचारी व्रत का पालन करके योगी साधना में सफलता पाता है। वह भी स्वर्ग तक। जबकि अर्जुन की दो पत्नियाँ थी। एक तो सुभद्रा (भगवान कृष्ण की बहन) तथा दूसरी द्रौपदी। इससे सिद्ध है कि गीता का ज्ञान काल द्वारा ही दिया गया है जो कुछ सत्य कुछ असत्य है।

।। पूर्ण परमात्मा प्राप्त करने की विधि व व्रत निषेध की जानकारी।।

विचार करें :-- अध्याय 6 के श्लोक 16 का सारांश :- इसमें स्पष्ट किया है कि व्रत (खाना न खाने वाले) से योग साधना सिद्ध नहीं होती है अर्थात् व्रत की पूर्ण मनाही की है और अधिक खाना भी मना है, अधिक सोना व जागना भी साधक की साधना में बाधक है।

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 17 का सारांश :- दुःखों का नाश करने वाला योग यानि भक्ति तो शास्त्रानुकूल साधना करने से सिद्ध होगी अर्थात् वह पूर्ण मोक्ष प्राप्ति की साधना तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले की दैनिक कार्य करते-करते भक्ति करने वाले की तथा यथायोग्य सोने तथा जागने वाले की ही सिद्ध होती है।(6/17)*

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 18-19 का सारांश :- जो तत्वज्ञान समझा हुआ व्यक्ति संसारिक विषयों से पूर्ण रूप से मन हटा लेता है। वह वास्तव में (युक्तः) भक्ति में लगा कहा जाता है।(6/18)*

❖ *उस साधक की इन्द्रियाँ ऐसे निश्चल होती हैं जैसे जिस स्थान पर वायु न चल रही हो, वहाँ रखे दीपक की लौ (ज्योति) चलायमान नहीं होती। उसी प्रकार अन्तरात्मा से परमात्मा की भक्ति (योग) में लगे हुए योगी यानि भक्त के मन व इन्द्रियों की स्थिति कही गई है।(6/19)*

❖ *अध्याय 6 श्लोक 20 का अनुवाद है कि मन रोकने की (योग अभ्यास) साधना करते हुए जब {(उपर मते) अर्थात् पहले वर्णित शास्त्रानुकूल मत (विचार) के अनुसार साधना करने से मत का*

भाव है कि शास्त्रानुकूल साधना पूर्ण संत से उपदेश ले कर गुरु मर्यादा में रहते हुए केवल एक पूर्ण परमात्मा पर अटल विश्वास के साथ आधारित रहना। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से रहित होना। यह मत (राय-सलाह) कही है।} निश्चल हो जाता है उस स्थिति में (आत्मना) आत्म ज्ञान के द्वारा (आत्मनाम) अपनी जीव स्थित को देख कर अर्थात् जान कर (आत्मनि) अपने पूर्ण परमात्मा की भक्ति में संतुष्ट हो जाता है अर्थात् जीव तथा आत्मा को एक स्थिति में जानता है जैसे बर्फ और जल की स्थिति है। चूंकि जल से ही बर्फ बनी है ऐसे ही आत्मा ही जीव बनी है जब तक बर्फ है उसमें पानी वाले गुण नहीं हैं। इसी प्रकार बर्फ-बर्फ है, पानी-पानी है। यदि कोई कहे बर्फ ही पानी है वह सही जानकार नहीं है। यदि कोई कहे जीव ही ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है वह अल्पज्ञ है। बर्फ से पानी बनाया जाए तब पानी वाले गुण आएंगे। इसी प्रकार जीव से ब्रह्म बनाया जाएगा तब वह ब्रह्म यानि परमात्मा जैसे गुण वाला अविनाशी आत्मा होगा।

सार :- अध्याय 6 के श्लोक 16 से 32 में कहा है कि अन्न-जल सोने-जागने का संयम करके यानि ठीक-ठीक खाए-पीए, जागे-सोवे, ऐसे रहकर पूर्ण परमात्मा के कभी समाप्त न होने वाले आनन्द (पूर्ण मुक्ति) को प्राप्त करने के लिए शास्त्र के अनुसार नियमित साधना करनी चाहिए। पूर्ण गुरु की खोज करें जो पूर्ण परमात्मा का मार्गदर्शक हो। फिर निष्कपट छलरहित भाव से व पूर्ण आस्था से निश्चल मन से आत्म तत्व को तथा जीव के दुःख को याद रख कर पहले (उपरमते) दिए विवरण अनुसार जैसा जो यज्ञ नहीं करता वह पापी-चोर है। यज्ञ भी गुरु के द्वारा शास्त्रों में वर्णित विधि से (मतपरः) मतानुकूल (मतावलम्बी) भाव से करें। पूर्ण परमात्मा की भक्ति पूर्ण मुक्ति (परम-गति) व परम शांति दे सकती है। जो साधक परमात्मा और जीव की स्थिति सही तरह जान लेता है वही पूर्ण मुक्ति प्राप्त करता है। जो प्राणी काल (ब्रह्म) के आधीन हैं वे काल (ब्रह्म) को भगवान मानते हैं। काल (ब्रह्म) का उन पर पूरा दायित्व है। जो साहेब कबीर हंस हैं वे काल से बाहर हैं। इसलिए कहा कि जो मुझ काल को भजते हैं वे मुझे सर्वेसर्वा मानते हैं तथा वे प्राणी भी मेरी नजरों से दूर नहीं हैं अर्थात् मैं (काल) उन पर पूरी नजर रखता हूँ भावार्थ है कि जो काल उपासक ब्रह्म की साधना करता है वह काल (ब्रह्म) के जाल में ही रहता है जो पूर्ण परमात्मा का भजन करता है वह काल जाल से बाहर है। साधना करने वाले साधक के लिए मन के द्वारा इन्द्रियों को वश करके साधना सफल मानी है अन्यथा नहीं।

।। मन को रोकना वायु रोकने के समान।।

गीता अध्याय 6 श्लोक 33-36 का सारांश :-

अध्याय 6 के श्लोक 33, 34 में अर्जुन ने प्रश्न किया कि भगवान! मन रोकना वायु को रोकने के समान है अर्थात् अति असम्भव। अध्याय 6 के श्लोक 35, 36 में काल भगवान ने कहा है कि मैं मानता हूँ कि मन चंचल है। यह कठिनता से काबू होने वाला है। फिर भी शास्त्र विधि अनुसार साधना के अभ्यास से तथा इस अध्याय 6 के श्लोक 1 से 9 में वर्णित विधि के अनुसार वैराग्य से वश में किया जा सकता है। यदि मन काबू नहीं हुआ तो योगी असफल अर्थात् मुक्ति की बजाय नरक प्राप्ति है। विचार करें पाठकजन :- जो साधना काल ब्रह्म ने बताई है। उसी को भगवान शिव जी करते हैं। उसके करने से मन को भगवान शिव भी काबू नहीं कर पाया जिन्होंने 88 हजार वर्ष तक अभ्यास किया तथा वैराग्य किया। फिर आम व्यक्ति तथा अर्जुन कैसे मन काबू कर सकता है? (विशेष विवरण कप्या अध्याय 3 के सारांश में पढ़ें) ज्ञान तो सही है काल भगवान (ज्योति निरंजन)

का परंतु जो साधना बताई है वह पूर्ण नहीं है जो मन को काबू कर सके। वह साधना साहेब कबीर जी ने बताई है कि बाल-बच्चों में रहो या वैराग्य धारण करो परंतु पूर्ण संत को गुरु बनाओ जो सतनाम व सारनाम देता हो। शास्त्र अनुकूल साधना करो, मनमाना आचरण मत करो तब काल-जाल से मुक्त हो सकते हो।

गीता अध्याय 6 श्लोक 37-39 का सारांश :-

।। साधक की साधना बिगड़ने पर क्या होगा?।।

विचार करें :-- अध्याय 6 के श्लोक 37 से 39 में अर्जुन ने पूछा कि मान लो कोई साधक (योगी) साधना करता हुआ बीच में विचलित हो जाए तो क्या वह दुर्गति को प्राप्त तो नहीं होता?

गीता अध्याय 6 श्लोक 40-44 का सारांश :-

अध्याय 6 के श्लोक 40 से 44 तक में काल भगवान ने उत्तर दिया है कि ऐसा व्यक्ति न तो इस लोक का ही रहता है और न ही परलोक का अर्थात् घर का न घाट का नहीं रहता, उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। क्योंकि हे प्यारे (अर्जुन) आत्मोद्धार के लिए कर्म करने वाला जो कोई मनुष्य भक्ति मार्ग से भ्रष्ट नहीं होता वह दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 तक साधना से पथ भ्रष्ट साधक का विवरण किया है। वह भक्ति के मार्ग से विचलित साधक घर का रहता है न घाट का अर्थात् पूर्ण रूप से विनाश को प्राप्त होता है। वह चौरासी लाख योनियों के कष्ट को भोगकर फिर पुण्यकर्मों के आधार से स्वर्ग आदि लोकों में अपने पुण्य कर्मों को वेद वाणी में वर्णित पुण्यों के नियत समय तक भोग भोगता है फिर पतन को प्राप्त होता है अथवा अच्छे आचरण वाले भक्तों के घर पर जन्म लेता है, परन्तु अर्जुन ऐसा जन्म असम्भव है। जब वह व्यक्ति मनुष्य जन्म प्राप्त कर लेता है तो अपने स्वभाव वश शास्त्रविधि रहित साधना करता है। जिस कारण से वेदों में वर्णित शास्त्रविधि अनुकूल साधना का उल्लंघन कर जाता है। जिस कारण से जीवन व्यर्थ हो जाने से विनाश को प्राप्त होता है।

गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 में भी स्पष्ट किया है कि ''जो साधक वेदों अनुसार साधना करता है वह अपनी साधना का फल दिव्य देवताओं की तरह स्वर्ग आदि दिव्य लोकों में भोगकर अर्थात् समाप्त करके फिर संसार में जन्म-मरण के आवागमन के चक्र में गिरकर नष्ट हो जाता है। विचार करें यही प्रमाण गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 में है कि वह योग भ्रष्ट साधक अपनी साधना की कमाई को, बहुत समय तक दिव्य लोकों में भोग कर फिर अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। इससे भी वही गीता अध्याय 9 श्लोक 20-21 वाला ही प्रमाण है आवागमन व जन्म-मरण चक्र ही बना रहेगा। इसलिए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद जो अन्य अनुवाद कर्त्ताओं द्वारा किया है वह ठीक नहीं है। जिसमें वे स्वयं स्वीकार करते है कि मारीचि ऋषि योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त हुआ। यही मारिचि वाली आत्मा श्री महावीर जैन हुए जिनके विषय में आवागमन की बहुत बड़ी लिस्ट बनी है। विचार करें :- गीता जी के अन्य अनुवाद कर्त्ता स्वयं भक्ति से भ्रष्ट जड़ भरत योगी का उदाहरण देते हैं।

योगी की दुर्गति होने का प्रमाण :- श्रीमद्भागवद् सुधा सागर के पांचवे स्कंद के आठवें अध्याय के पष्ठ नं. 265 में राजा ऋषिभदेव का पुत्र राजा जड़भरत का वर्णन है।

एक जड़भरत नामक योगी योग साधना कर रहा था। उसके सामने एक हिरनी किसी के भय से भागती-2 एक बच्चे को जन्म दे गई। जड़भरत ने दया वश होकर उस हिरनी के बच्चे का

लालन-पालन किया। फिर उस से प्रेम इतना हो गया कि एक बार वह बच्चा कहीं दूर निकल गया और दो तीन दिन तक वापिस नहीं आया। तो मोहवश हो कर योगी जड़भरत जी ने खाना-पीना व निंद्रा त्याग दी और बेहाल हो गया। जब वह बच्चा वापिस आया तो योगी जी ने उसे अपने सीने से लगाया तथा बहुत प्यार किया। फिर जड़भरत का देहांत होने लगा तो उसकी आस्था हिरणी के बच्चे में बनी रही। इसलिए वह जड़भरत योगी योग भ्रष्ट हो जाने से हिरणी के गर्भ से जन्म लेकर हिरन का बच्चा बनकर उसी बच्चे के साथ खेलने लगा अर्थात् दुर्गति को प्राप्त हुआ। पवित्र गीता जी के अन्य टीकाकारों (अनुवाद कर्त्ताओं) ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फिर आगे विवरण दिया है कि चौरासी लाख जूनियों को भोग कर वही आत्मा उच्च कुल (ब्राह्मणों) के घर पर जन्म लेकर फिर भक्ति करके मुक्ति हुई।

यदि यह भी मानें तो भी दुर्गति तो हुई तथा फिर क्या पता भक्ति सफल होवे या न होवे? यदि उच्च घरानों (ब्राह्मणों) के घर जन्म लेकर ही मुक्ति सम्भव है तो अन्य जातियाँ तो भक्ति मुक्ति से वंचित रह गई।

विशेष विचार : -- परमात्मा के घर पर जाति मजहब नहीं है। भक्तियुक्त आत्मा संस्कार वश कहीं भी जन्म ले वह फिर भक्ति पर शीघ्र ही लग जाती है। परंतु जो पथ भ्रष्ट हो जाएगा उसे चौरासी लाख प्रकार के प्राणियों के शरीर में कष्ट निश्चित मिलेगा। एक साधक का ब्राह्मण घर में जन्म हुआ वह साधना करता हुआ लगातार तीन जन्म ब्राह्मणों के घरों में ही जन्म लेता रहा। अंत समय में जब उस साधक के प्राण जाने वाले थे। उससे कुछ दिन पहले एक सुन्दर लड़की जो चमार (चर्मकार) की पुत्री थी को देख कर उसकी सुन्दरता पर आसक्त होकर विवश हो गया। परंतु मन को समझा कर सद्भावना पूर्वक अपनी दुर्भावना को बदलते हुए मन में विचार किया कि हे भगवान! ऐसी सुन्दरी मेरी माँ बने। फिर उस साधक का चमार के घर जन्म हुआ तथा पहले गुरु रामानन्द से और फिर पूर्ण गुरु कबीर साहेब से नाम लेकर मुक्ति को प्राप्त हुआ। वह साधक संत रविदास जी था। कृप्या पाठक गण स्वयं विचार करें अन्य अनुवाद कर्त्ताओं को कैसा ज्ञान है।

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 44 का विवेचन :-

गीता अध्याय 6 श्लोक 40 का अनुवाद अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने किया है कि ''योग भ्रष्ट साधक का विनाश न इस लोक में होता है, न परलोक में क्योंकि भक्ति करने वाला कोई भी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता। फिर श्लोक 41-42 का अनुवाद किया है कि वह योग भ्रष्ट व्यक्ति स्वर्ग आदि लोकों को प्राप्त होकर शुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों के घर जन्म लेता है। ऐसा जन्म इस संसार में अति दुर्लभ है।

अपने उपरोक्त अनुवाद के समर्थन में प्रमाण दिया है कि जड़ भरत योगी एक हिरनी के बच्चे से प्रेम करने के कारण योग भ्रष्ट हो गया। जिस कारण से उसका अगला जन्म हिरनी के गर्भ से हुआ अर्थात् हिरण की योनी (पशु श्रेणी) को प्राप्त हुआ। फिर श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर मुक्त हुआ।

विचार करें :- गीता अध्याय 6 श्लोक 36 में स्पष्ट किया है कि जिसका मनवश में किया हुआ नहीं है अर्थात् जो योग भ्रष्ट हो गया है (योग भ्रष्ट वही होता है जिसका मनवश में नहीं होता) ऐसे व्यक्ति को योग अर्थात् मोक्ष मार्ग दुष्प्राय है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती केवल जिनका मन वश में है जो योग भ्रष्ट नहीं होता वह पुरूष ही सत्य साधना से परमात्मा प्राप्त करता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के अनुवाद में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने लिखा है कि योग भ्रष्ट साधक कभी दुगर्ति को प्राप्त नहीं होता वह स्वर्गादि उच्च लोकों को प्राप्त होता है कि शुद्ध आचरण वाले

पुरूषों के घर जन्म लेता है। उपरोक्त जड़ भरत योग भ्रष्ट साधक वाला उदाहरण ही उनके द्वारा किए गीता अध्याय 6 श्लोक 40 से 42 के विपरीत है। जिस में कहा है कि योग भ्रष्ट होने के कारण भरत जी को हिरण का शरीर प्राप्त हुआ।

कप्या विचार करें पाठकगण ''पशु योनी'' प्राप्त प्राणी दुर्गति को प्राप्त होता है या परमगति को? पशु शरीर ही दुर्गति का प्रतीक है। गर्मी-सर्दी-भूख-प्यास, ओले गिरने से शरीर पर कष्ट, रोगी होने पर कोई उपचार नहीं, टांग-पैर टूट जाने पर भूख प्यास से तड़फ-2 कर मत्यु को प्राप्त होना। हिंसक पशुओं के डर से इधर-उधर जीवन रक्षा के लिए दौड़ते रहना अन्त में बाघ या अन्य हिंसक प्राणी का ग्रास बन जाना आदि-2 महा दुर्गति के प्रमाण हैं। वैसे तो गीता में गीता ज्ञान दाता ब्रह्म द्वारा पवित्र श्री मद्भगवत् गीता व पवित्र वेदों में कहा है यह पूर्ण मोक्ष दायक नहीं है। इस ज्ञान के आधार साधना करने वाला साधक पुण्य के आधार से स्वर्ग तथा पाप के आधार से अन्य प्राणियों के शरीर को प्राप्त होता है तथा नरकगामी भी होता है। इसलिए गीता ज्ञान दाता ब्रह्म ने गीता अध्याय 15 श्लोक 4 व अध्याय 18 श्लोक 62 तथा अध्याय 4 श्लोक 34 में तथा यजुर्वेद अध्याय 40 श्लोक 10 व 13 में कहा है कि पूर्ण परमात्मा ही पूर्ण मोक्ष प्रदान कर सकता है। उस परमात्मा की शरण में जा। उस के लिए तत्वदर्शी सन्तों की खोज कर उनके बताए भक्ति मार्ग पर चल कर उस परमेश्वर के परम पद की खोज करनी चाहिए जहाँ जाने के पश्चात् साधक कभी लौट कर इस संसार में जन्म नहीं लेता। मैं (गीता ज्ञान दाता) भी उसी की शरण हूँ।

विशेष प्रमाण :- जड़ भरत के विषय में अन्य अनुवाद कर्त्ताओं ने कहा है कि हिरण के शरीर का जीवन भोग कर फिर अच्छे आचरण वालों के ब्राह्मणों के घर जन्म लेकर मुक्त हो गया।

विचार करते हैं :- राजा ऋषभ देव का पुत्र भरत जी थे ऋषभदेव जी ने हजारों वर्ष साधना की तत्पश्चात भरत के पुत्र ''मारीचि'' को प्रथम बार शिष्य बनाया। फिर कुछ वर्षों पश्चात् भरत को दिक्षा दी। भरत जी अयोध्या का राज त्याग कर जंगल में साधना करने गया। जहाँ पर वह योग भ्रष्ट होकर हिरण के जन्म को प्राप्त होकर दुर्गति को प्राप्त होकर नष्ट हो गया।

अब भरत जी के पूज्य पिता जी व गुरूदेव श्री ऋषभदेव जी के जीवन पर विवेचन करते हैं जो योग भ्रष्ट नहीं हुए थे तथा वेदों में वर्णित विधि से गुरू से दिक्षा प्राप्त करके आजीवन साधना करते रहे। श्री ऋषभदेव जी को पवित्र जैन धर्म का संस्थापक व प्रथम तीर्थ कर माना गया है।

श्री ऋषभदेव जी अन्त समय में दिगम्बर (निःवस्त्र) होकर मुख में पत्थर का टुकड़ा डाल कर बन में घूम रहे थे। अचानक जंगल में आग लगी। जिस दावानल में श्री ऋषभदेव जी का स्थूल शरीर नष्ट हो गया अर्थात् श्री ऋषभदेव जी की मत्यु हो गई। (यह प्रमाण श्रीमद्भागवत् सुधा सागर अध्याय 9 पष्ठ 280-281 पर है।)

उपरोक्त विवरण से पाठक जन कप्या स्वयं निर्णय करें श्री ऋषभदेव जी मुक्त हुए या दुर्गति को प्राप्त हुए। इस के पश्चात् श्री ऋषभदेव जी वाला ही जीव बाबा आदम बना। (प्रमाण :- ''आओ जैन धर्म को जाने'' पुस्तक के पष्ठ 154 पर)

हजरत आदम जी को पवित्र इसाई धर्म व पवित्र मुस्लमान धर्म के श्रद्धालु अपना मुखिया मानते हैं। अर्थात् दोनों धर्मों के सर्वश्रेष्ठ सन्त व प्रमुख हजरत आदम जी हैं। आदम जी के दो पुत्र हुए। एक का नाम काईन तथा छोटे का नाम हाबिल था। इर्ष्यावश काईन ने अपने छोटे भाई हाबिल की हत्या कर दी। फिर शाप वश काईन भी गांव व देश त्याग कर चला गया। बाबा आदम जी को महाकष्ट का सामना करना पड़ा। पश्चात् अन्य पुत्र हुआ। उससे आदम जी का कुल व भक्ति

प्रारम्भ हुई। नौ सौ वर्ष की आयु में आदम जी की मत्यु हुई। (प्रमाण पवित्र बाईबल में) पश्चात् बाबा आदम जी पितर लोक में पितर बने। वहाँ पितर लोक में विराजमान होकर भी बाबा आदम सुखी नहीं हुए। प्रमाण :- जीवनी हजरत मुहम्मद लेखक मुहम्मद इनायतुल्लाह सुब्हानी पष्ठ 157 से 165 लिखा है कि ''हजरत मुहम्मद जी को एक फरिस्ता ऊपर स्वर्ग में ले गया। वहाँ अन्य नबी देखे तथा एक स्थान पर एक व्यक्ति देखा जो बाई ओर मुख करके रो रहा था या दाई ओर मुह करके हंस रहा था। हजरत मुहम्मद जी के पूछने पर फरिस्ता जब्रील ने बताया कि यह हजरत आदम है रोने व हंसने का कारण बताते हुए हजरत जब्रील ने बताया कि बाई ओर नरक में निक्कमी सन्तान कष्ट उठा रही है। उनको देख कर हजरत आदम जी रोते हैं तथा दाई ओर स्वर्ग में पुण्यकर्मी सन्तान सुखपूर्वक रह रही है उन्हें देखकर हंसते हैं। विचार करें पाठक जन हजरत आदम जी ही श्री ऋषभदेव हैं साधना करके ऊपर स्वर्ग में बने पितर लोक में पितर बने है। जिस साधना के करने से दोनों पवित्र धर्मों (इसाई धर्म व मुस्लमान धर्म) का प्रमुख तथा पवित्र जैन धर्म का प्रमुख भी पूर्ण मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सका। जो इस पथ्वी लोक व ऊपर स्वर्ग लोक में भी सुखी नही तो योग भ्रष्ट होकर उनका (श्री ऋषभ देव जी का) शिष्य तथा पुत्र कैसे परमगति को प्राप्त हो सका।

इसी प्रकार श्री ऋषभदेव जी का पौत्र (भरत का पुत्र) मारिची जो योग भ्रष्ट भी नहीं हुआ तथा वेदों के अनुसार साधना अपने दादा जी ऋषभदेव जी से दीक्षा लेकर करता था। वह भी दुर्गति को प्राप्त हुआ। जिसने करोड़ों बार कुत्ते के जीवन भोगे, करोड़ों बार गधे के जन्म प्राप्त हुए तथा करोड़ों बार अन्य प्राणियों के शरीर में कष्ट उठाया तथा केवल अस्सी लाख बार देव बन कर पुण्य को स्वर्ग में भोगा। फिर नरक में गया। फिर जैन धर्म का चौबीसवां तीर्थकर ''श्री महाबीर जैन'' बना श्री महावीर जैन जी ने 363 (तीन सौ तरेसठ) पाखण्ड मत चलाए। यह ब्रह्म (काल) द्वारा दिये गीता व वेद ज्ञान अनुसार साधना का फल है। (प्रमाण :- पुस्तक ''आओ जैन धर्म को जाने '' पष्ठ 294 से 296 जिसके लेखक प्रवीण चन्द्र जैन (एम.ए. शास्त्री) प्रकाशक श्री मति सुनिता जैन जम्बुद्वीप हस्थीनापुर मेरठ उत्तर-प्रदेश)

उपरोक्त विवरण से सिद्ध हुआ कि योग भ्रष्ट साधक नष्ट हो जाता है वह न यहाँ का रहता है न वहाँ का। क्योंकि यदि यहाँ अच्छे कुल में जन्म लेकर भी एक दिन संसार त्याग जाएगा। वहाँ परलोक में अपने पुण्य समाप्त करके वहाँ से भी निकल जाएगा। इसलिए उसका तो नाश ही होता है अध्याय 6 श्लोक 43 का भावार्थ है कि योग भ्रष्ट होने से पूर्व की साधना के प्रभाव से मानव शरीर में परमात्मा प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है। योग भ्रष्ट होने से पूर्व वाली भक्ति कमाई से ही वह (श्लोक 41-42 में कहे) स्वर्गादि लोकों व अच्छे व्यक्तियों के घर जन्म प्राप्त करता है। उस पूर्व की भक्ति कमाई को नष्ट करने के पश्चात् कभी मानव शरीर प्राप्त होता है तब भी वह पूर्व संस्कार वश भक्ति का प्रयत्न करता है। श्लोक 44 में कहा कि उस पूर्व के डगमग होने वाले स्वभाव वश हुआ परमात्मा को प्राप्त करने वाला जिज्ञासु होकर भी सद्ग्रन्थों में वर्णित परमात्मा की यर्थाथ नाम जाप की विधि का भी उल्लंघन कर जाता है। अर्थात् फिर से पतन को प्राप्त हो जाता है।

❖ *गीता अध्याय 6 श्लोक 45 का सारांश :-*

गीता अध्याय 6 श्लोक 45 में कहा है कि जो साधक योगभ्रष्ट नहीं होता वह प्रत्येक जन्म में वेदों में वर्णित साधना करता रहता है। उस का स्वभाव निष्चल होता है। वह प्रयत्न पूर्वक योग नष्ट न हो कर साधना करने वाला अर्थात् तत्वदर्शी सन्त मिलने पर उस के द्वारा बताए भक्ति मार्ग पर

चल कर पूर्व के अनेकों जन्मों में की ब्रह्म (काल) साधना इसी को त्याग कर पाप मुक्त होकर पूर्ण परमात्मा को प्राप्त होता है अर्थात् परमगति को प्राप्त होता है। गीता अध्याय 18 श्लोक 66 में गीता ज्ञान दाता ने कहा है कि सर्वधमान् परित्यज्य माम् एकम् शरणम् व्रज अहम् त्वा सर्वपापेभ्यः मोक्षयिष्यामि मा शुचः (66)

शब्दार्थ :- (माम्) मुझ ब्रह्म की (सर्वधर्मान्) सर्व धार्मिक अनुष्ठानों की पूजा को मुझ में (परित्यज्य) त्यागकर (एकम्) उस अद्वितीय परमात्मा अर्थात् जिसके समान शक्तिशाली व कल्याण करने वाला अन्य नहीं है उस एक परमेश्वर की (शरणम्) शरण में (व्रज) जा (अहम्) मैं (त्वा) तेरे (सर्वपापेभ्यः) सम्पूर्ण पापों से (मोक्षयिष्यामि) छुड़वा दूंगा अर्थात् मुक्त कर दूंगा (मा शुचः) चिन्ता मत कर।

भावार्थ :- गीता ज्ञान दाता प्रभु कह रहा है कि तू अनेक जन्मों में कि हुई मेरी पूजा को मुझे प्रदान कर दे (मुझमें छोड़ दे) तब मैं तुझे सर्व पापों से मुक्त कर दूंगा।

कारण क्या है?:- हम युगों-2 से वेदों अनुसार साधना भी करते आ रहे हैं। उस भक्ति की कमाई को स्वर्ग में निवास करके या राजा आदि उच्च पद प्राप्त करके समाप्त कर देते हैं। तत्वदर्शी सन्त के ज्ञान के पश्चात् हम काल (ब्रह्म) के लोक की किसी भी सुविधा की अपेक्षा नहीं करेगें। वह पूण्य कमाई ब्रह्म को छोड़ देंगे। यह हमें ऋण मुक्त कर देगा। फिर जो कष्ट पाप के कारण नरक व अन्य प्राणियों के शरीरों में भोगना पड़ता था वह नहीं भोगना पड़ेगा। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् उस पूर्व ब्रह्म का नियम हमारे ऊपर लागू नहीं रहता। ब्रह्म के लोक में पुण्य तथा पाप भिन्न-2 भोगने अनिवार्य है। पूर्ण परमात्मा की शरण में जाने के पश्चात् ब्रह्म के नाम (ब्रह्मशब्द) की कमाई इसी को छोड़ देते हैं और हम पूर्व के पापों से छूट जाते हैं। फिर वह पापमुक्त योगी परमगति को प्राप्त होता है अर्थात् पूर्ण मोक्ष प्राप्त करता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

।। पूर्ण योगी कौन?।।

अध्याय 6 के श्लोक 46 में काल भगवान ने कहा है कि सत्यनाम साधक तपस्वियों से तथा गीता अध्याय 7 श्लोक 16 से 18 तक में वर्णित ज्ञानियों से भी श्रेष्ठ हैं तथा सकाम कर्म करने वालों से भी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तू कर्मयोगी(नाम का साधक) हो जा।

विचार करें :-- योगी वह हो सकता है जो मन इन्द्रियों को वश कर ले। यह अति असम्भव है, मन वश हुए बिना मुक्ति नहीं और मन न तो श्री ब्रह्मा जी के वश हुआ क्योंकि श्री ब्रह्मा जी अपनी ही पुत्री पर आसक्त हो गए थे। मन न श्री शिवजी के वश हुआ। क्योंकि श्री शिवजी भी भगवान विष्णु द्वारा मोहिनी अप्सरा का रूप बनाने पर उस मोहिनी पर आसक्त होकर उस के पीछे सैक्स (संभोग) करने के उद्देश्य से चल पड़े थे तथा उनका शुक्रपात भी हो गया था। मन न श्री विष्णु जी के वश हुआ क्योंकि जिस समय श्री विष्णु जी ने वरहा रूप धारण करके शंखासुर का वध किया था। उस समय पथ्वी देवी को देखकर उससे सैक्स (संभोग) किया। (ये उपरोक्त प्रमाण पुराणों में हैं) अब स्वयं पाठक विचार करें कि श्री ब्रह्मा जी, श्री विष्णु जी तथा श्री शिवजी भी वेदों में वर्णित साधना करते हैं। उस साधना से इन तीन लोक के प्रधानों का मन वश नहीं हुआ तो अन्य साधक का कही ठिकाना है? अध्याय 6 के श्लोक नं. 47 में कहा है सब साधकों में भी पूर्ण श्रद्धा मेरे में रखने वाले मुझे मान्य हैं। चूंकि भक्ति चाहे ब्रह्म की करो चाहे परब्रह्म की और चाहे पूर्णब्रह्म की, वह श्रद्धापूर्वक की जानी चाहिए। तभी उस इष्ट का पूर्ण लाभ प्राप्त हो सकता है। परन्तु वे मेरे साधक

भी अधूरी साधना में ही लीन हैं, क्योंकि ब्रह्म(काल) साधक भी कर्म दण्ड से नहीं बचते। गीता ज्ञान दाता ने गीता अध्याय 7 श्लोक 18 में अपनी साधना से प्राप्त होने वाली गति को अनुत्तम (अश्रेष्ठ) कहा है। फिर पवित्र गीता अध्याय 18 श्लोक 62 में संकेत किया है कि यदि पूर्ण मोक्ष रूप परम शान्ति व सत्यलोक स्थान को प्राप्त करना है तो उस परमेश्वर (पूर्ण ब्रह्म) की शरण में जा।

गीता अध्याय 4 श्लोक 32 में कहा है कि सम्पूर्ण तत्वज्ञान का परमात्मा स्वयं ही विस्तृत वर्णन करता है। अध्याय 4 श्लोक 34 में कहा है कि उस तत्वज्ञान को तत्वदर्शी जानते हैं, उनसे ज्ञान ग्रहण कर, तब उनके बताए भक्ति मंत्रों से उस परमेश्वर की प्राप्ति होगी।

❑❑❑